पंत का काव्य और स्त्री प्रश्न

*डॉ. श्रीकांत यादव**

छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में ख्यातिलब्ध हैं। इनके सम्पूर्ण रचनात्मक कर्म में प्रकृति की मनोहर छवियाँ अपनी सम्पूर्ण नैसर्गिकता के साथ उपस्थित हुई है। जहाँ तक नारी के स्वरूप और सौन्दर्य का सवाल है वह इस सम्पूर्ण सृष्टि की उत्तम रचना में सर्वोत्तम है। वस्तुतः नारी इस लीलामयी सृष्टि की उत्कृष्ट सौन्दर्य चेतना है। जो परम पुरुष की स्वातंत्रमयी इच्छाशक्ति का व्यक्त स्वरूप प्रकृति का हेतु है। जिस प्रकार प्रकृति के अभाव में परम सत्ता की स्थिति जड़ है। उसी प्रकार यह मानव सृटि भी नारी के बिना अपूर्ण एवं गतिहीन है। पंत की सौन्दर्य विषयक अवधारणा पर पंडित शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि ''पंत के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में एक सुदर्शन शिल्पी का रचना सौन्दर्य है। निःसंदेह कवि का सबसे बड़ा काव्य स्वयं कवि है। कविता को पढ़ें चाहे कवि को देखें दोनों अभिन्न हैं।''[1] पंत नारी को देवी, माँ, सहचरिणी प्राण आदि के रूप में बारहा उल्लेख किया है। ये समस्त छवियाँ प्रकृति के साथ अन्योन्याश्रित रूप में व्यक्त हुई है। कभी प्रकृति के मानवीकरण के रूप में तो कभी प्रकृति की अपूर्णता को पूर्ण करने के सन्दर्भ में। उन्होंने यह तथ्य स्वयं स्वीकार्य किया है कि प्रकृति को मैंने अपने से अलग सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है। जब कभी मैंने प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव किया तब मैंने अपने को भी नारी रूप में ही चित्रित किया है। यथा–

उस फैली हरियाली में
मौन अकेली खेल रही माँ,
वह अपनी वयवाली में।''[2]

वीणा (1927), पल्लव (1928), गुंजन (1932) आदि संग्रहों में पंत के यहाँ नारी प्रकृति की सामीप्यता में दृष्टिगत हुई है। गुंजन में संग्रहित कविता 'नौका विहार' में कवि को नारी सैकत सैया पर लेटी हुई छीड़ा काय युवती नजर आती है–

सैकत शय्या पर दुग्ध धवल
तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल
लेटी है शांत क्लांत निश्चल।[3]

सुमित्रानन्दन पंत प्रकृति की शुकुमारता को पूर्णता में चित्रित करने के लिए संवेदन समुच्च, कोमलांगी नारी को आधार भी बनाया है। यहाँ बाल कवि नहीं रह गया जो प्रकृति की अपार सौन्दर्य की मनमोहनकारी छंटा से अपने को मुक्त नहीं कर पा रहा था। जो उसकी द्रुमों की छाया और माया

---

* पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

से मुक्त न हो सका था कि वह बालों के बाल जाल में फँसता। कवि पल्लव तक आते–आते युवावस्था को प्राप्त कर लिया है। प्रकृति और नारी अब उसके लिए सौन्दर्यात्मक स्थिति में एक ही सिक्के के पहलू हो गये थे। इसीलिए पंत की सम्पूर्ण रचनाधर्मिता में नारी का दामन पवित्र रखते हैं। स्वतः उनके कण्ठ से पवित्र गान फूट पड़ता है। यथा–

तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणी
त्रिवेणी की लहरों का गान।

ग्रन्थि (1920) संग्रह में पंत की नारी का विरहणीय रूप व्यक्त हुआ है। इस संबंध में सर्वस्वीकार्य आलोचकीय अवधारणा है कि ग्रन्थि पंत का दुखांत कथानक है। इस तथ्य पर विचार करते हुए आलोचक चौथीराम यादव का कथन है कि ''इसमें विरह की आग है, वेदना का उत्ताप है, हृदय की टीस है और साथ ही साथ अतृप्त आत्मा की मूक धड़कन भी।''[4] वस्तुतः पंत की नारी पूरे भारतीय परिवेश में व्यक्त हुई है। ग्राम्य (1939–40) में भारतीय ग्रामीण स्त्रियों की मनोहर अभिव्यक्ति हुई है। और साथ ही साथ पंत इस संग्रह में चिंतनशील भी दिखाई पड़ते हैं। ग्रामीण स्त्रियों के वस्त्र, आभूषण को लेकर उनमें प्रचलित लोकाचार एवं रूढ़ियों को पूरी सहजता से पंत ने व्यक्त किया है। ऐसी धारणा समाज में बनी हुई थी कि पति की असामयिक मृत्यु भी पत्नी दोष के परिणामस्वरूप ही होता है। इस रूढ़ि की शिकार नारी अन्ततः लोक व्यंग्य व ताने से आहत होकर आत्महत्या के लिए कृतसंकल्पित होती है। ऐसी भयावह और दारुण परिस्थिति में भी इस पुरुष वर्चस्ववादी समाज में कोई पश्चाताप नहीं है। बल्कि उसकी तुलना पैरों की जूती से की जाती है। यह हमारे आधुनिक समाज का रोना है। यथा–

''घर में विधवा रही पतोहू
लक्ष्मी थी यद्यपि पति घातिन
पकड़ गंगाया कोतवाल ने
डूब कुएं में मरी एक दिन
खैर पैर की जूती, जोरू
न सही एक, दूसरी आती।''[5]

चितम्बरा और रश्मिबंध में कवि मृदुलता, मनोहारिता आदि सहज स्त्रियोचित गुणों एवं भावों की कोमलकांत अभिव्यक्ति हुई। साथ ही साथ प्रकृति के जटिल एवं संश्लिष्ट चित्रों को कवि ने अधिकांश नारी सौन्दर्य एवं उसकी विभिन्न मुद्राओं, मनःस्थितियों का चित्रण किया है। मसलन– ''सैकत शैय्या पर दुग्ध धवल तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल/लेती है श्रांत क्लांत निश्चल. ....शशि मुख से दीपित मृदु करतल''। इसी प्रकार व्योम से रूपसी नारी के रूप में धरती पर चुपचाप उतर रही संध्या सुन्दरी परी चित्रण भी दर्शनीय है। वस्तुतः पंत काव्य में आलम्बन रूप में नारी की सौन्दर्य चेतना की परम

अभिव्यक्ति हुई है। बहरहाल नारी का कोमल व उदात्त रूप पंत के यहाँ छायावादी रोमानियत के आलोक में ही अभिव्यक्ति पाया है। परन्तु छायावाद के समापन के उपरांत जब पंत प्रगतिवादी काव्य चेतना से संपृक्त होकर यथार्थ लोक में रचनात्मक कर्म करते हैं तब उनमें इन कोमलकांत मृदुलता के बरक्स जीवन की अनेक विसमताओं से सामना करना पड़ता है और इस यथार्थ की मटमैली भूमि पर स्त्री जीवन को समझने का सार्थक प्रयास आरम्भ होता है। युगांत और युगवाणी में जिसकी अभिव्यक्ति इस रूप में होती है। ''यौनि नहीं है रे–नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठा, उसे पूर्ण स्वाधीन करो/वह रहे न नर पर अवसित।'' पंत की नारी विषयक अवधारणा का सीमांकन करते हुए श्री देवी खरे ने लिखा कि ''नारी स्वतंत्रता की समस्या पंत जी द्वारा मुख्य रूप से सामाजिक स्तर पर नहीं प्रत्युत नैतिक स्वर पर उठाई गई है, और हल की गई है। केवल क्रान्ति ही नारी को सच्ची स्वाधीनता दिला सकती है। किन्तु पंत जी तो भारतीय नारी की गरिमा तपोज्ज्वल और शोभाचेतना के रूप में देखते हैं और उनका विचार है कि नर नारी का हृदय मुक्ति में ही नव मानवता का विकास सम्भव है, नारी की क्रान्ति से नहीं।''[6]

प्रगतिशील काव्य चेतना मार्क्सवादी वैचारिकी की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। जिसमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के जरिये प्रधानशक्ति सामाजिक स्तर पर मुख्य धारा के रूप में सामाजिक संरचना को प्रभावित करती है। दरअसल यह समय पूँजीवाद का है। इस पूँजीवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति में नारी की स्थिति क्या है? वस्तु के दायरे से बाहर हो सकी बताने की जरूरत नहीं। अर्थतंत्र के जाल में नारी केवल खिलौना मात्र है–

''नैतिकता से भी जो रहते अपरिचित
शय्या की क्रीड़ा कंदुक है जिसकी नारी।''[7]

स्त्रियों के प्रति मध्यकालीन अवधारणा से पंत आहत हैं। प्राचीन युग मातृ प्रधान था। उसका वहाँ विपुल सम्मान था। लेकिन स्त्री किस प्रकार पुरुषों के वर्चस्ववादी मूल्यों के सामने हारती गई। मातृ प्रधान समाज या विवाह के पतन के बाद जब स्त्री पूरे समुदाय या वर्ग से संबंधित न होकर एक पुरुष की पत्नी के रूप में अस्तित्व ग्रहण की तब से ही उसके महत्व को कम करने के उद्गम आरम्भ हुए। यह प्रक्रिया स्त्री के सम्मान और वजूद को खा गया। क्योंकि एक विवाह बहुत बाद की उपज है। बिल्कुल आरम्भिक अवस्था में लोग केवल माता को ही जानते पिता को नहीं। आज वर्तमान समय में पिता की हैसियत समाज में जो स्वीकारोक्ति है, यह न्यूनाधिक उस समय माता की रही होगी। मन्मथनाथ गुप्त ने स्त्री–पुरुष संबंध के रोमांचकारी इतिहास में ऋग्वेद की ऋचाओं के हवाले से आदिमाता अदिति के माध्यम से मातृ सत्ता के विपुल सम्मान का हवाला देते हुए लिखा कि ''ऋग्वेद के अदिति सम्बन्धी मंत्रों को पढ़िये, विशेषकर जिसमें कहा गया है कि वह पिता है, माता है, कबीला है। उनमें उनके प्रति कितनी श्रद्धा का

भाव था; उसका कितना विपुल सम्मान था।''[8] अन्ततः मूल्यों के द्वन्द्व में स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था में किस प्रकार हारती चली गई और वह धीरे–धीरे आत्मविहीन देह मात्र रह गई। इसी स्थिति को पंत ने युगवाणी में चित्रित किया है।

''यौनि मात्र रह गई मानवी, निज आत्मा का अर्पण
पुरुष प्रकृति की पशुता का पहने नैतिक आभूषण
नष्ट हो गई उसकी आत्मा, त्वचा रह गई पावन
युग–युग से अवगुंठित ग्रहणी, सहती पशु के बन्धन।''[9]

लोकायतन तक आते–आते पंत पर अरविन्द दर्शन का प्रभाव पूर्णतः परिलक्षित होने लगता है। इसमें कवि ने मिलन को आध्यात्मिकता के आवरण में प्रस्तुत किया है। यथा–

''तुम्हीं प्रेम हो क्या शोभा प्रति में
चिर रहस्यमयी, खोला अवकुंठन
स्वप्नों की मधुरस निर्झरी तुमसे
अन्तःसुख में मुखरित मेरा मन।''[10]

अन्ततः पंत ने स्पष्ट किया है कि अब नारी और पुरुष के सम्बन्धों को अधिक स्वच्छंदता आ गयी है। ऋषि कुमार चतुर्वेदी ने लोकायतन में नारी के प्रीति के बारे में कहा है कि ''लोकायतन में अधिकांश स्थलों पर नारी नर की प्रीति है। इसमें छायावादी कुंठा का विसर्जन नहीं हो सका है। कवि का नर–नारी के काम रहित संबंध हवाई दीवार पर खड़ा है, साथ ही प्रकृति के रूप में नारी के रंगीन मधुर चित्र उपस्थित किये हैं।''[11] स्वर्ण किरण, स्वर्ण–धूलि, उत्तरा आदि में नारी अपनी सम्पूर्णता में व्यक्त हुई है। कृष्णदत्त पालीवाल ने ठीक ही लिखा है कि ''गुंजन कवि की आत्मा का बिम्ब है जिसमें छायावाद के सबेरे की दिगंतव्यापी लालिमा प्रस्फुटित हो रही है। इसमें कवि ने नारी का मोहिनी, कुहुकिनी तथा छलविस्मयमयी रूप चित्रित किया है–

''अखिल कल्पनामयी अरी अपसरी
अखिल विस्मयाकार
अकथ, अलौकिक, अमर अगोचर भावों का आधार
गूढ़, निर्भय, असम्भव, अस्फुट भेदों की शृंगार।''[12]

पंत के यहाँ नारी के औदात्य रूप की सृष्टि सम्पूर्ण पंत के यहाँ नारी के औदात्य रूप की सृष्टि सम्पूर्ण प्रकृति के नाना रूपात्मक जगत से कहीं प्रभावित होती है तो कहीं प्रभावित भी करती है। रूपसी नारी के सौन्दर्य उदात्तता तब और बढ़ जाती है जब उसके इस अद्‌भुत सौन्दर्य से प्रकृति जल कर लाता हो उठती है। यथा–

''तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार, लग गई मधु के तन में ज्वाल
खड़े किंसुक अनार कचनार, लालसा की लौ से उठ लाल।''[13]

सम्पूर्णता में यदि देखा जाए तो पंत की नारी विषयक अवधारणा नैतिकता के आदर्श रूप में विन्यस्त है जहाँ वह निष्कलुष तथा मानवीय सदाशयता का विराट पुंज अपने दामन में संजोये हुए दिखाई पड़ती है। पंत की नारी विषयक भावों की उदात्तता का पता इससे भी चलता है कि इनकी दृष्टि में नारी सौन्दर्य ही श्रेष्ठ है इसीलिए प्रकृति के समस्त सुन्दरतम् रूप में वह विद्यमान है। इसीलिए वह कवि के लिए प्रकृति के समतुल्य प्रेरणा का श्रोत भी है।

संदर्भ :

1. ज्योति विहग– पं0 शान्तिप्रिय द्विवेदी– हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण– 1950, पृ0 56
2. आधुनिक कवि– श्री सुमित्रानन्दन पंत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1986, द्वितीय संस्करण, पृ0 3
3. गुंजन– सुमित्रानंदन पंत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 101
4. छायावादी काव्य– एक दृष्टि– चौथीराम यादव, किताबघर प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1991, पृ0 94
5. ग्राम्य– सुमित्रानंदन पंत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1939–40, पृ0 18
6. छायावादी कवि और माघ– डॉ0 श्रीदेवी खरे, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1985, पृ0 44
7. युगान्त– पंत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 1939, पृ0 68
8. युगवाणी– पंत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 1939, पृ0 64
9. लोकायतन– पंत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 58
10. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता रस निकष पर– ऋषि कुमार यतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 69
11. सुमित्रानंदन पंत– कृष्ण दत्त पालीवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 67
12. गुंजन– पंत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 35
13. युगवाणी– पंत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 1939, पृ0 45

***